धर्म तो आत्मा का स्वभाव है

संसार में धर्म ऐसा नाम तो समस्त लोक कहता है; परन्तु धर्म शब्द का अर्थ तो जो नरक-तिर्यंचादि गतियों में परिभ्रमणरूप दु:खों से आत्मा को छुड़ाकर उत्तम आत्मिक, अविनाशी, अतीन्द्रिय, मोक्षसुख में धर दे ह्न उसे कहते हैं।

सो ऐसा धर्म मोल नहीं आता, जो धन खर्च करके दान-सन्मानादि द्वारा प्राप्त कर लिया जावे। धर्म किसी के द्वारा दिया नहीं जाता, जो सेवा-उपासना से प्रसन्न करके ले लिया जावे। मन्दिर, पर्वत, जल, अग्नि, देवमूर्ति, तीर्थक्षेत्रादि में भी धर्म नहीं रखा है, जो वहाँ जाकर लाया जावे। उपवास, व्रत, कायक्लेशादि तप एवं शरीरादि को कृश करने से भी धर्म नहीं मिलता है। देवाधिदेव के मन्दिर में उपकरणदान, मण्डल-पूजनादि से, घर छोड़कर वन-जंगल-श्मशान आदि में निवास करने तथा परमेश्वर का नाम-जाप करने से भी धर्म नहीं मिलता है।

धर्म तो आत्मा का स्वभाव है। परद्रव्यों में आत्मबुद्धि छोड़कर अपने ज्ञाता-दृष्टारूप स्वभाव का श्रद्धान, अनुभव (ज्ञान) और ज्ञायक स्वभाव में ही प्रवर्तनरूप आचरण धर्म है। जब उत्तमक्षमादि दशलक्षणरूप अपने आत्मा का परिणमन, रत्नत्रयरूप परिणति तथा जीवों की दयारूप आत्मा की परिणति होती है; तब आत्मा स्वयं ही धर्मरूप होगा, परद्रव्य-क्षेत्र-कालादिक तो निमित्तमात्र हैं। जब यह आत्मा रागादिरूप परिणति छोड़कर वीतरागरूप होता है; तब मन्दिर, प्रतिमा, तीर्थ, दान, तप, जप समस्त ही धर्मरूप हैं और यदि अपना आत्मा उत्तमक्षमादि वीतराग सम्यग्ज्ञानरूप नहीं परिणमे तो कहीं भी धर्म नहीं है।

जहाँ शुभराग हो वहाँ पुण्यबंध होता है। जहाँ अशुभराग-द्वेष-मोह हो वहाँ पापबन्ध होता है। जहाँ शुद्ध श्रद्धान-ज्ञान-स्वरूपाचरणरूप धर्म है, वहाँ बन्ध का अभाव है। बन्ध का अभाव होने पर ही उत्तम सुख होता है; अत: वही धर्म है।

ह्न रत्नकरण्डश्रावकाचार, श्लोक 2 का भावार्थ

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : २५ २८० अंक : ४

प्रवचनसार पद्यानुवाद

मोक्षमार्गप्रज्ञापनाधिकार

तीन गुप्ति पाँच समिति सहित पंचेद्रियजयी।
ज्ञानदर्शनमय श्रमण ही जितकषायी संयमी।।२४०।।
कांच-कंचन बन्धु-अरि सुख-दु:ख प्रशंसा-निन्द में।
शुद्धोपयोगी श्रमण का समभाव जीवन-मरण में।।२४१।।
ज्ञानदर्शनचरण में युगपत सदा आरूढ़ हो।
एकाग्रता को प्राप्त यति श्रामण्य से परिपूर्ण हैं।।२४२।।
अज्ञानि परद्रव्याश्रयी हो मुग्ध राग-द्वेषमय।
जो श्रमण वह ही बाँधता है विविध विध के कर्म सब।।२४३।।
मोहित न हो जो लोक में अर राग-द्वेष नहीं करें।
वे श्रमण ही नियम से क्षय करें विध-विध कर्म सब।।२४४।।

शुभोपयोगप्रज्ञापनाधिकार

शुद्धोपयोगी श्रमण हैं शुभोपयोगी भी श्रमण।
शुद्धोपयोगी निरास्रव हैं आस्रवी हैं शेष सब।।२४५।।
वात्सल्य प्रवचनरतों में अर भक्ति अर्हत् आदि में।
बस यही चर्या श्रमणजन की कही शुभ उपयोग है।।२४६।।
श्रमणजन के प्रति बंदन नमन एवं अनुगमन।
विनय श्रमपरिहार निन्दित नहीं हैं जिनमार्ग में।।२४७।।

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

विषयों की रुचि नहीं होती

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 38 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है ह्न

यथा यथा न रोचन्ते विषया: सुलभा अपि ।
तथा तथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ।।

जैसे-जैसे सुलभ (सहज प्राप्त) इन्द्रिय-विषय रुचिकर नहीं लगते हैं, वैसे-वैसे स्वात्मसंवेदन में उत्तम निजात्मतत्त्व अनुभव में आता है।

(गतांक से आगे...)

यहाँ पूज्यपादस्वामी वैसी ही बात कहते हैं जैसी आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने कलश में तथा पण्डित बनारसीदासजी ने उसके भावानुवाद में कही है।

हे भाई ! यदि तू सम्यक्त्व की प्राप्ति करना चाहता है तो एक बार इस जगत से उदास हो, समस्त संकल्प-विकल्पजालों के विकारों को तज दे और एकांत में स्थिर होकर अपनी आत्मा के अनुभव का एक-छह महिना विचार कर ! तुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति अवश्य होगी; क्योंकि स्वयं के घटरूपी सरोवर का तू ही कमल है और उसकी दृष्टि करने से उसकी सुवास भी तू ही ले सकता है।

लोग एल.एल.बी. आदि लौकिक पढ़ाई के लिए वर्षों व्यतीत कर देते हैं; पर भाई ! यहाँ तो मात्र छह महिने अभ्यास करने की बात कही है। तू एक बार छह महिने अपनी आत्मा की लगन लगा ले, फिर अनुभव ना हो तो कहना।

सर्वज्ञ परमात्मा आत्मा की अद्भुत महिमा प्रसिद्ध करते हैं, उनकी वाणी में भी उसके पूर्ण स्वरूप का कथन नहीं हो पाता तो सामान्यजनों की वाणी में कितना वर्णन आ सकता है ? आत्मा तो अनुभवगोचर है, वचनातीत है, उसका परिपूर्ण स्वरूप तो ज्ञान में ही जानने में आता है।

भगवान आत्मा अनन्तगुणों की खान है। उसकी दृष्टि करने पर वह प्राप्त नहीं हो - ऐसा नहीं हो सकता; किन्तु उसके लिए एकबार यह निश्चित करना होगा कि मुझे आत्मा की प्राप्ति करना ही है।

आचार्य शिष्य को समझाते हुए कहते हैं कि हे भाई ! तीर्थयात्रा, व्रत-भक्ति,

पूजा आदि करने से कल्याण होगा - ऐसे व्यर्थ के विचाररूप कोलाहल को छोड़कर छह माह तक निश्चिंत होकर एकान्त में आत्मावलोकन का अभ्यास कर ! कर्म, वाणी, शरीरादि पुद्गलों से भिन्न हृदयरूपी सरोवर में चैतन्यतेज से परिपूर्ण अपनी आत्मा को जान ! तुझे उसकी उपलब्धि जरूर होगी। अरे भाई ! जब अन्तर्मुहुर्त मात्र में ही आत्मा का दर्शन हो सकता है, तब छह माह तो बहुत है।

समस्त पदार्थों को जाननेवाला यह महान चैतन्यात्मा है, उसे गुरूपदेश से यथार्थ समझकर उसका ग्रहण/अभ्यास कर ! अवलोकन कर !! तो तुझे आत्मा तत्त्व की प्राप्ति अवश्य ही होगी।

इसप्रकार 38 वीं गाथा में आत्मा के वेदन, ज्ञान, आनन्द, शांति इत्यादि का अनुभव होने से आत्मसंवित्ति निरन्तर बढ़ती जाती है - उसका स्वरूप कहा।

अब आगे 39 वीं गाथा कहते है -

निशामयति निःशेषमिन्द्रजालोपम् जगत्।
स्पृह्यत्यात्मलाभाय गत्वान्यत्रानुतप्यते ।।39।।

योगी समस्त जगत को इन्द्रजाल के समान समझते हुए आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिये अभिलाषा करता है; किन्तु अन्य विषय में लग जाये तो पश्चात्ताप करता है।

यहाँ कहते है कि जिस ज्ञानी जीव ने आत्मा की दृष्टि और उसमें जुड़ान किया है - उसे सम्पूर्ण संसार इन्द्रजालसमान भासित होता है।

आत्मसिद्धि में ज्ञानी जीव की आत्मदशा का वर्णन करते हुए श्रीमद् रायचन्द्रजी कहते है कि - 'ज्ञानी सकल जगत को स्वप्न समान जानता है।'

उक्त बात का तात्पर्य यह है कि कोई जीव स्वप्न में स्वयं को अनेक प्रकार के वैभवादि से युक्त देखे; किन्तु निद्रा समाप्त होने के पश्चात् स्वप्न में देखा गया वह वैभव वास्तविक रूपमें कुछ भी नहीं रहता; उसीप्रकार बाह्य जगत् में दिखाई देने वाला वैभव भी स्वप्नसमान है - ऐसा जानकर ज्ञानी को परपदार्थों में रुचि होती ही नहीं है।

बाह्य परपदार्थों का संयोग आज तक अनंतबार प्राप्त हुआ है और अनंतबार उन पदार्थों का वियोग भी हुआ, अत: उनमें क्या एकाकार होना ?

अज्ञानी अनुकूल सामग्री की उपस्थिति में ' मैं ऐसा करूँ, मैं वैसा करूँ ' इत्यादि अनेक विकल्प करते हुये मर जाता है; किन्तु अपनी आत्मा की प्राप्ति, उसके अनुभव के लिए एक समय भी विचार नहीं करता है।

धर्मी जीव तो आत्मस्वभाव प्राप्ति की ही निरन्तर अभिलाषा करता है और यदि अन्य विषयों में राग आवे तो यह विचार करता है कि अरे ! यह मेरा स्वरूप नहीं है। मेरे चैतन्यघर से बाहर मैं कैसे आ गया ?

भले ही उस समय उसे शुभभाव आते हैं; किन्तु अपने स्वभाव-स्वरूप से बाहर होने के कारण वे शुभभाव आदरणीय नहीं है, अत: धर्मी को बाह्य किसी भी विषय में राग उत्पन्न होवे तो पश्चात्ताप होता है, दु:ख होता है। वह पुनश्च स्वरूप में आने का प्रयास करता है और इसप्रकार उसके अन्तर में धीरे-धीरे धर्म की वृद्धि होती है।

धर्मी जीव समस्त संसार को इन्द्रजाल के समान जानता है। अपनी आत्मा के अतिरिक्त अन्य समस्त पदार्थों के प्रति उसे उपेक्षाबुद्धि रहती है। वह जानता है कि शरीर, स्त्री-पुत्र, मकान, ग्राम-नगर आदि समस्त पदार्थों में किसीप्रकार का परिवर्तन होता है तो वह अपनी स्वयं की योग्यता से होता है, उसमें मेरा कोई अधिकार नहीं है।

इसके विपरित अज्ञानी जीव अपने अज्ञानभाव के कारण इन बाह्य पदार्थों के फेरफार में स्वयं को कर्त्ता मानता है, यही उसकी वास्तविक भूल है। जड़ द्रव्यों में अपना अधिकार माननेवाला अधिकारी जड़ ही है, चेतन नहीं।

जिसप्रकार इन्द्रजाल कोई वस्तु नहीं है, उसीप्रकार स्वयं के लिए बाह्य समस्त वस्तु अवस्तु ही है, अत: उन पदार्थों के प्रति उत्पन्न ग्रहण-त्यागादिरूप समस्त अभिप्राय मिथ्या ही है।

परपदार्थ में किसीप्रकार का फेरफार हो - ऐसा वस्तुस्वभाव ही नहीं है, किन्तु अज्ञानी जीव अपनी मिथ्याबुद्धि से ऐसा मानता है कि मैं परका ग्रहण-त्याग कर सकता हूँ, पर की दया पाल सकता हूँ; किन्तु यह समस्त अभिप्राय मिथ्या ही है।

ज्ञानी की परपदार्थों में ऐसी कर्त्ताबुद्धि नहीं होती। परपदार्थों के प्रति उपेक्षाबुद्धि रखते हुए वह सदैव अपने चिदानन्दस्वरूप आत्मा की प्राप्ति के लिए प्रयत्नरत रहता है; क्योंकि निज अन्तर की वस्तु अपने पुरुषार्थपूर्वक ही प्राप्त होती है।

परद्रव्यों से मुझे कोई लाभ-हानि नहीं है और मुझसे परद्रव्यों को कोई लाभ-हानि नहीं है - ऐसा निर्णय हो जाने से ज्ञानी को परपदार्थों के प्रति उपेक्षाबुद्धि वर्तती है; किन्तु अस्थिरताजन्य दोष के कारण पूर्व संस्कारवश मन-वचन-काय की प्रवृत्ति भी होती है, तथापि जिसे स्वात्मसंवेदन करने में ही आनन्द आता है उसे चराचर और स्थावर-जंगमरूप समस्त बाह्य पदार्थों में उपेक्षाबुद्धि ही वर्तती है। **(क्रमश:)**

विभाव व्यंजन पर्यायें

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की 15 वीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथायें मूलत: इसप्रकार है ह्न

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जिय पज्जाया ते सहावमिदि भणिदा ।।15।।

मनुष्य, नारक, तिर्यंच और देवरूप पर्यायें विभावपर्याय कही गई हैं और कर्मोपाधिरहित पर्यायें स्वभावपर्याय कही गई हैं।

(गतांक से आगे...)

ज्ञानी जीव वस्तुस्वभाव की दृष्टिवाला होने से मनुष्य, देव, नरक और तिर्यंच पर्यायरूप नहीं होता। पर्यायमूढ अज्ञानी जीव ही मनुष्यादि पर्यायरूप होता है।

(1) अज्ञानी पर्याय मूढ़ है; अत: वह शुभ-अशुभ मिश्र परिणामरूप से व्यवहार से मनुष्य होता है, निश्चय से तो वह जीव ही है। व्यवहार दृष्टिवाला जीव स्वयं को व्यवहार से मनुष्य न मानकर निश्चय ही मनुष्य मान बैठा है। वह यह मानता है कि मैं मनुष्य पर्यायरूप ही हूँ। निश्चय दृष्टिवाला ज्ञानी स्वयं को मनुष्यादिरूप नहीं मानता ।

निश्चय से तो आत्मा त्रिकाल निजगुण-पर्यायों से एकाकार है। मनुष्याकार आदि पर्यायें तो क्षणिक हैं, वे आत्मा का स्वभाव नहीं है। इसीलिये कहा है कि अज्ञानी शुभाशुभ मिश्र परिणाम से व्यवहार से मनुष्य होता है। उसकी मनुष्याकार पर्याय अशुद्धव्यंजनपर्याय है।

(2) इसीप्रकार व्यवहार दृष्टिवाला जीव केवल अशुभ परिणाम से व्यवहार से नारकी होता है। उसकी नारक आकार पर्याय ही नरकपर्याय है। निश्चय से तो आत्मा विभावव्यंजनपर्यायरूप होता ही नही है ।

(3) किंचित् शुभमिश्रित माया परिणाम से यह आत्मा व्यवहार से तिर्यंचकाय में जन्मता है। उसका आकार ही तिर्यंच पर्याय है।

निगोद से लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच तक सभी जीव तिर्यंच हैं। उनके आत्मप्रदेशों की आकृति तिर्यंच के शरीर प्रमाण होती है। यह तिर्यंचपर्याय भी विभावव्यंजन पर्याय है। जिसप्रकार लोटे में रहनेवाला जल उसके आकार प्रमाण हो जाता है; उसीप्रकार शरीर में रहनेवाले आत्मा का आकार भी शरीर प्रमाण हो जाता है; किन्तु अज्ञानी जीव उस देह और विभावपर्याय को ही अपनास्वरूप मान लेता है।

(4) केवल शुभकर्म से व्यवहार से आत्मा देव होता है। उसका आकार देवपर्याय है।

ये चारों प्रकार की व्यंजनपर्यायें अशुद्धपर्यायें हैं। इनका विशेष विस्तार तो आगम ग्रन्थों से जानना चाहिये।

अज्ञानी जीव को जो-जो शरीर मिलता है, वह अपने को उसी आकारवाला मान लेता है और त्रिकालस्वभाव को जानता ही नहीं; इसलिये उसकी विभाव पर्याय को ही अशुद्धपर्याय में ले लिया है। यहाँ अशुद्धपर्याय में रागादि की बात नहीं है। यहाँ तो विभावपर्याय को अपनास्वरूप माननेवाली राग-द्वेष मोहरूप अशुद्धपर्यायें तथा त्रिकाली स्वरूप को जाननेवाली सम्यग्दर्शन आदि निर्मलपर्यायें - इसप्रकार दोनों तरह की पर्यायें उसमें गर्भित हो गई है।

अब 15वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुये मुनिराज निम्न श्लोक कहते हैं -

अपि च बहुविभावे सत्ययं शुद्धदृष्टि:
सहजपरमतत्त्वाभ्यासनिष्णातबुद्धि: ।
सपदि समयसारान्नान्यदस्तीति मत्त्वा
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूप: ।।27।।

विभाव होने पर भी सहज परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है - ऐसा यह शुद्ध दृष्टिवाला पुरुष 'समयसार से अन्य कुछ नहीं है' - ऐसा मानकर शीघ्र परमश्रीरूपी सुन्दरी का वल्लभ होता है।

24 वें श्लोक में ऐसा कहा था कि परभाव होने पर भी... जो शुद्ध आत्मा को, एक को भजता है - ऐसा तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धपुरुष मुक्ति सुन्दरी का वल्लभ होता है।

26 वें श्लोक में ऐसा कहा कि जीवतत्त्व क्वचित् सहज पर्यायों सहित और क्वचित् अशुद्ध पर्यायों सहित विलसता है – इन सबसे सहित होने पर भी इन सबसे रहित ऐसे जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिये भाता हूँ।

और अब यहाँ 27 वें श्लोक में ऐसा कहते हैं कि अहो ! पर्याय में बहु विभाव होने पर भी सहज स्वाभाविक परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है, वह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष शीघ्र मुक्ति प्राप्त करता है।

परमतत्त्व का अभ्यास कहकर चारित्र बतलाया। **प्रवीणबुद्धि** कहकर सम्यक्ज्ञान बतलाया और **शुद्धदृष्टि** कहकर सम्यग्दर्शन बतलाया – ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवाला पुरुष शीघ्र मुक्ति प्राप्त करता है।

जिसकी बुद्धि अपने सहज परमतत्त्व में ही लगी, वही प्रवीणबुद्धि है। ऐसा शुद्धदृष्टिवाला पुरुष यह मानता है कि 'इस समयसार से अन्य कुछ नहीं है, मेरे एकाकार सहज स्वभाव के अतिरिक्त किसी अन्य को जगत में मैं देखता ही नहीं; क्योंकि मुझमें उन सबका अभाव है। क्षणिक विभाव का भी मुझमें अभाव है। मैं तो शुद्ध कारण परमात्मा समयसार हूँ।'

अहो ! **जिन** और **जीव** एकाकार है। सभी आत्मायें सिद्धिरूपी लता के कन्द हैं, एक-एक आत्मा अमृत की लता का फल है। अज्ञानी भले ही अपने को पर्याय जितना ही माने; किन्तु ज्ञानी कहते हैं कि वह व्यवहार से ही मनुष्यादि पर्यायरूप हुआ है, निश्चय से तो सिद्धसदृश ही है।

जो जीव विभाव की दृष्टि छोड़कर अपने शुद्धस्वभाव की दृष्टि-ज्ञान करके उसकी भावना में एकाग्र होता है, वह जीव शीघ्र परमश्रीरूपी सुन्दरी का वल्लभ होता है।

जगत में सर्वोत्कृष्ट सुन्दर वस्तु तो आत्मा की आनंदमय मुक्तदशा ही है – ऐसी दशा प्रकट हो जाने के पश्चात् उसका कभी विरह नहीं होता।

इसप्रकार 15 गाथायें पूर्ण हुई। यहाँ त्रिकाली द्रव्य-गुण और कारणशुद्धपर्याय का वर्णन किया। जो ऐसे जीव को मानता है, वह मुक्ति पाता है और जो उसको जाने बिना रागादि पर्याय को ही अपना स्वरूप मानता है, वह चतुर्गति में भ्रमण करता है। ❊

छहढाला प्रवचन

भवभ्रमण के महान दुःखों की कथा

तास भ्रमन की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनन्त निगोद मँझार, वीत्यो एकेन्द्रिय तन धार।।३।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान दौलतरामजीकृत छहढाला पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

अनादिकाल के अज्ञान से संसार में भ्रमण करते हुए जीव के दुःखों की कथनी तो बहुत लम्बी है। अरे ! उस अनन्त अपार दुःख का वर्णन कैसे हो ? फिर भी पूर्वाचार्यों ने उसका जो वर्णन किया है, उसके अनुसार यहाँ कुछ कहा जाता है।

प्रथम तो पूर्वाचार्यों के प्रति विनय एवं ग्रंथ की प्रामाणिकता दर्शाते हुए कहते हैं कि यह ग्रंथ मैं अपनी कल्पना से नहीं बना रहा हूँ; अपितु पूर्वाचार्य श्री कुन्दकुन्दस्वामी, कार्तिकेय स्वामी वगैरह बड़े-बड़े मुनिवरों ने शास्त्रों में जो कहा है, उसी के अनुसार मैं कुछ कहूँगा। कार्तिकेयस्वामी ने कार्तिकेयानुप्रेक्षा में तीसरी व ग्यारहवीं अनुप्रेक्षा में जो वर्णन किया है, उसी शैली से इसमें कथन है।

जीव के परिभ्रमण की और उसके दुःख की कथा तो अपार है, उस दुःख का वेदन तो उस जीव ने ही किया और केवली भगवान ने जाना। उस अपार दुःख का वर्णन वाणी में तो कितना आ सकता है ? फिर भी बड़े-बड़े मुनियों ने शास्त्र में जो वर्णन किया है, उसी के अनुसार मैं इस छहढाला में कुछ कहूँगा; भले ही अल्प कहूँगा, किन्तु यथार्थ कहूँगा, विपरीत नहीं।

भाई ! आत्मा की पहिचान के बिना तू बहुत रुला, बहुत भटका और तूने बहुत दुःख पाया। तूने इतना दुःख पाया कि वचन से कहा न जाए। अनन्तकाल तो निगोद में एकेन्द्रियपन में ही बीता। अरे ! निगोद के दुःख की तो क्या बात? एक ओर सिद्ध का सुख और इसके विपरीत निगोद का दुःख ह्न दोनों वचनातीत हैं। सातवीं नरक पृथ्वी से भी अनन्तगुने दुःख निगोद के हैं। भैया ! जब दुःख इतना महान है तो इसका मतलब है कि तेरी भूल भी महान है; बड़ी भूल के मिटाने का बड़ा पुरुषार्थ करे; इसलिये यह उपदेश है।

दुःख से छूटने का व सुखी होने का उपाय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही है; परन्तु वह अत्यन्त दुर्लभ है। अनन्तकाल में निगोद से निकलकर त्रसपर्याय पाना दुर्लभ है, त्रस में भी संज्ञीपना दुर्लभ है, कदाचित् संज्ञी हो तो भी क्रूर तिर्यंच होवे या नारकी होवे; उसमें मनुष्य पर्याय का मिलना दुर्लभ, उसमें आर्यदेश और उत्तम जैन कुल मिलना दुर्लभ; उसमें दीर्घ आयु, इन्द्रियादि की पूर्णता और सच्चे देव-गुरु का संग मिलना महा दुर्लभ ह्न यह सब मिलने पर भी अन्तर में आत्मा की रुचि और सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह तो बहुत ही दुर्लभ एवं अपूर्व है और इसके बाद रत्नत्रय का पाना तथा उसकी अखण्ड आराधना करना, सबसे अधिक दुर्लभ है। सभी दुर्लभों में भी दुर्लभ ऐसे रत्नत्रय धर्म को जानकर बहुत ही आदरपूर्वक उसकी आराधना करो ह्न ऐसा बोधिदुर्लभ भावना में उपदेश है।

यह अवसर पाकर हे जीव ! अपने उपयोग को रत्नत्रय की आराधना में जोड़ !

संसारभ्रमण करता हुआ जीव बहुत काल तो निगोद में ही रहा। निगोददशा नरक से भी हीन है; वहाँ जीव मन एवं चार इन्द्रियों को तो हार बैठा है, एक मात्र स्पर्शन संबंधी अतीव अल्प ज्ञान रहा है। अनन्त ज्ञानशक्ति का धनी होकर भी मोह से मूर्च्छित होकर दुःख के समुद्र में बिलख रहा है। नरकादि में बाहर की प्रतिकूलता का दुःख तो देखने में आता है; परन्तु निगोद में जीव की ज्ञानादि शक्तियाँ अत्यन्त हीन हो गई हैं और मोह की बहुत तीव्रता है, इसका जो अकथनीय अनन्त दुःख है, वह साधारण जीवों को कल्पना में भी नहीं आ सकता।

एक निगोद शरीर में अनन्त जीव उपजते-मरते हैं। अनन्त जीवों का एक ही शरीर है। निगोद का जो अनन्त दुःख है, वह केवली गम्य है। अब ऐसी दुःखदशा में से बाहर आकर जो मनुष्य हुआ है ह्न ऐसे जीव को चेतने का यह उपदेश है कि हे भाई ! ऐसे दुःख अनन्तबार तू भोग चुका, अब उस दुःख से छूटने का उपाय करने का अवसर है।

निगोद के जीव वहीं के वहीं एक शरीर में लगातार जन्म-मरण किया करते हैं। एक शरीर में मरकर फिर उसी शरीर में उत्पन्न हो, फिर मरे और फिर उसी में ऊपजे ह्न ऐसे एक ही शरीर में लगातार बहुत बार जन्म-मरण करते रहते हैं; जीव के अनेक भव बदल जायें, किन्तु शरीर तो वही का वही बना रहे। इसप्रकार के भी अनेक भव इस जीव ने किये। निजस्वरूप को भूलकर देह की ममता से अनन्त शरीर धारण किये;

परन्तु एक भी शरीर जीव का होकर जीव के साथ न रहा एवं अनन्तकाल से शरीर धारण करने पर भी आत्मा उस शरीररूप नहीं हुआ। उपयोगस्वरूप आत्मा जड़ कैसे हो जाये ? जीव सदैव शरीर से भिन्न ही रहा है। आत्मा और देह की भिन्नता समझाने के लिए वीतरागी सन्तों का यह उपदेश है।

आलू, शकरकन्द आदि के राई जितने छोटे टुकड़े में अनन्त जीवों का अस्तित्व है और उसमें से प्रत्येक जीव सिद्ध परमात्मा जैसी शक्तिवाला है; परन्तु तत्त्व की विराधना से उसकी चेतनाशक्ति इतनी हीन हो गई है कि सामान्य जीवों को तो 'यह जीव है' ह्न ऐसा स्वीकार करना भी कठिन पड़ता है।

अनार्यसंस्कार के कारण अनेक लोग अण्डे वगैरह में जीव का होना नहीं मानते और उसका भक्षण भी करते हैं; किन्तु अण्डे में तो सैनी पंचेन्द्रिय जीव हैं और उसका भक्षण तो सीधा मांसाहार ही है। उसके सेवन से पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा का बहुत बड़ा पाप लगता है। मच्छी-अण्डे आदि की बात तो बहुत दूर; शकरकन्द-आलू-लहसुन आदि कन्दमूल भी अनन्तकाय हैं, वे भी अभक्ष्य हैं।

यहाँ तो ऐसा कहना है कि निगोद के जीव चेतना की अत्यन्त हीनता के कारण बहुत दुःखी हैं। उनका अनन्त दुःख बाहर से दिखने में नहीं आता। हरी वनस्पतियाँ जो कि हवा के झकोरों से लहरा रही हों, लहराते समय भी उसके अन्दर मौजूद वनस्पतिकायिक जीव सातवीं पृथ्वी के नारकी से भी अनन्तगुनी वेदना भोग रहे हैं। जीवों ने अनन्तकाल तक ऐसा दुःख भोगा। नरक का तीव्र दुःख भी सुना नहीं जाता, उससे भी निगोद का दुःख बहुत अधिक है। उसे वचन से नहीं कहा जा सकता। वह तो ऐसी अत्यन्त हीन दशा है कि जहाँ मात्र स्पर्श के अतिरिक्त दूसरा कुछ जानने की ज्ञानशक्ति ही नहीं रही।

अरे जीव ! तेरी कथा बहुत बड़ी है। तेरे आनन्दस्वभाव की महिमा भी बड़ी और तेरे दुःख की कथा भी बड़ी। अनन्तकाल के दुःख से छूटने के लिए ये सन्तगुरु तुझे तेरे स्वभाव की महिमा दिखाते हैं, उसे तू ध्यान से सुन ! सावधान होकर सुन !!

रत्नत्रय धर्म के बिना तूने अबतक कैसे-कैसे दुःख भोगे, इसका विचार करके अब तुझे बोधिदुर्लभभावना भाना चाहिए, उसका ही उद्यम करना चाहिए। हे बन्धु ! हे वत्स ! धर्म के इस उत्तम अवसर को तू मत चूकना। ✻

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : कारणशुद्धपर्याय की बहुत महिमा गाई जाती है; परन्तु हमारे लिये वह उपयोगी कैसे है ?

उत्तर : वह वर्तमान में कारणरूप है, अत: जिसको वर्तमान कार्य (सम्यग्दर्शन से मोक्ष तक) प्रकट करना हो, उसको वह उपयोगी है; क्योंकि उस कारण का आश्रय लेने पर कार्य प्रकट होता है। वह कारणपर्याय द्रव्य से भिन्न नहीं है। द्रव्य त्रिकाल जैसे का तैसा ही पूरा का पूरा वर्तमान में वर्त रहा है। उस कारण को स्वीकार करके उसका आश्रय लेने पर निर्मल कार्य प्रकट हो जायेगा। द्रव्य-गुण का वर्तमान वर्तता स्व-आकार ही कारणशुद्धपर्याय है। अन्य कारणों का आश्रय छोड़कर इस स्व-आकार कारणशुद्धपर्याय के स्वीकार से ही शुद्धकार्य होता है।

प्रश्न : कारणशुद्धपर्याय में पर्याय शब्द आता है - ऐसी स्थिति में पर्याय दृष्टि का विषय हो जाती है ?

उत्तर : नहीं; पर्याय शब्द आ जाने से वह दृष्टि का विषय नहीं हो जाती । वह पर्याय द्रव्य के साथ सदा तन्मयपने वर्तती हुई द्रव्यदृष्टि के विषय में ही समाहित है। त्रिकाली समूचे द्रव्य का एक वर्तमान भेद होने से उसके लिये पर्याय शब्द का प्रयोग किया गया है और वर्तमान कार्य (मोक्षमार्ग) करने के लिये उसको वर्तमान कारण बताया है। इस कारणशुद्धपर्याय पर दृष्टि का जोर देने से सम्यग्दर्शनादि कार्य होते हैं।

प्रश्न : कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय किस नय के विषय हैं ?

उत्तर : कारणशुद्धपर्याय परमशुद्धनिश्चयनय का विषय है और कार्यशुद्धपर्याय शुद्धसद्भूत व्यवहारनय का विषय है।

प्रश्न : केवलज्ञानादि की शुद्धपर्यायों को निरपेक्ष कहा और कारणशुद्धपर्याय को भी निरपेक्ष कहा तो इन दोनों निरपेक्षों में क्या अन्तर है ?

उत्तर : ज्ञानावरणादि कर्मों के नाश से जो केवलज्ञानादि पर्यायें प्रगटी, वे

स्वभावपर्यायें हैं और उन्हें इन्द्रियों आदि की अपेक्षा नहीं है, इस अपेक्षा निरपेक्ष कहा जाता है; परन्तु कर्म के क्षय के साथ उनका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है - इतनी अपेक्षा तो उनमें आती ही है; किन्तु कारणशुद्धपर्याय में तो कर्म के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की भी अपेक्षा नहीं है। वह तो द्रव्य के साथ त्रिकाल निरपेक्षपने वर्तती है।

प्रश्न : क्या पुण्य और पाप समान है ?

उत्तर : जो कोई जीव पुण्य-पाप में भेद मानता है, वह जीव मिथ्यादृष्टि है और घोर संसारसागर में डूबेगा - ऐसा प्रवचनसार की गाथा-७७ में कहा है। पुण्य और पाप में अनात्मपना समानरूप से है। व्यवहार से पुण्य और पाप में जो भेद है, वह ज्ञान करने के लिये है; किन्तु परमार्थ से पुण्य और पाप में भेद नहीं है; क्योंकि दोनों में अनात्मपने की अपेक्षा से समानता है।

प्रश्न : प्रवचनसार में शुभ-अशुभ में भेद माननेवाले को मिथ्यादृष्टि कहा, जबकि अन्यत्र शुभ को छाया समान और अशुभ को धूप समान कहकर उसमें भेद बतलाया - ऐसा क्यों ?

उत्तर : शुभ-अशुभ को छाया-धूप के समान कहा है। यह तो ज्ञानी की बात है। ज्ञानी को पाँचवें गुणस्थान में शांति बढ़ी है, उसके शुभराग को व्यवहार से छायारूप कहा है। ज्ञानी के शुभराग को परम्परा से मोक्ष का कारण भी कहा है; किन्तु यह तो दृष्टि सम्यक् हुई है और अशुभ टला है, उसको व्यवहार से परम्परा कारण कहा है। अज्ञानी के शुभराग को छाया समान अथवा परम्परा मोक्ष का कारण नहीं कह सकते। अज्ञानी द्रव्यलिंगी मुनि शुक्ललेश्या के शुभराग से नववें ग्रैवेयक तक ऊपर गया और वहाँ से पुन: नीचे संसार में पतन हुआ। अज्ञानी का शुभराग किस गिनती में ? आत्मा अत्यन्त निर्लेप अखण्डानन्द परमात्मा है, उसकी दृष्टि किये बिना एक पग भी मोक्षमार्ग में नहीं जा सकते। संक्षेप में मूल सिद्धान्त एक ही है कि **स्व के आश्रय से मुक्ति और पर के आश्रय से संसार।** छहढाला में भी कहा है कि **लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ।**

नौवाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर सानन्द सम्पन्न

जयपुर (राज.) : पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट द्वारा प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर में दिनांक 28 सितम्बर से 7 अक्टूबर, 2006 तक नौवें आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया।

शिविर का उद्घाटन दिनांक 28 सितम्बर को प्रात: 8 बजे श्री अशोककुमारजी जैन इन्दौर (चेयरमैन, अरिहंत कैपिटल मार्केट्स लिमिटेड) के करकमलों से हुआ। इस अवसर पर आयोजित सभा की अध्यक्षता श्री बालचन्दजी पाटनी कोलकाता ने की।

मुख्यअतिथि के रूप में श्री दिलीपभाई शाह मुम्बई (अहिंसा चैरिटेबिल ट्रस्ट) एवं विशिष्ट अतिथियों के रूप में श्री प्रदीपकुमारजी चौधरी किशनगढ़, श्री शांतिलालजी चौधरी भीलवाड़ा, श्री विमलचन्दजी प्रकाशचन्दजी छाबड़ा इन्दौर, श्री प्रेमचन्दजी जैन अजमेर, श्री बालचन्दजी कोटा व श्री जुगराजजी कासलीवाल कोलकाता के अतिरिक्त ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री सुशीलकुमारजी गोदीका एवं ट्रस्ट के महामंत्री डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल मंचासीन थे। सभा के पूर्व ध्वजारोहण श्री महावीरप्रसादजी सरावगी कोलकाता व प्रवचन मण्डप का उद्घाटन श्री निहालचन्दजी घेवरचन्दजी जैन (ओसवाल इण्डस्ट्रीज) जयपुर के करकमलों से किया गया।

इस अवसर पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने अपने मार्मिक उद्बोधन में वर्तमान समय में शिविरों की उपयोगिता एवं आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुये पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की स्थापना से लेकर आज तक चल रही गतिविधियों का उद्देश्य एकमात्र तत्त्वप्रचार ही है - यह बताया। साथ ही ट्रस्ट के संस्थापक अध्यक्ष स्व.श्री पूरणचन्दजी गोदीका के त्याग, समर्पण व तत्त्वप्रचार की भावना का स्मरण दिलाते हुये संस्था की रीति-नीति से जन सामान्य को अवगत कराया। अन्त में यही भावना व्यक्त की कि गुरुदेवश्री द्वारा प्रसारित यह तत्त्वज्ञान अनेक माध्यमों से घर-घर तक पहुँचे।

अध्यक्षीय उद्बोधन में श्री बालचन्दजी पाटनी कोलकाता ने गत वर्ष कोलकाता में सम्पन्न हुये पंचकल्याणक के पश्चात् वहाँ चल रही विशेष गतिविधियों का श्रेय इन आध्यात्मिक शिक्षण-शिविरों को ही दिया। उन्होंने कहा कि शिविर के माध्यम से ही तत्त्वप्रचार-प्रसार की अविरल धारा अनवरत रूप से चलती रह सकती है।

सभा का संचालन व आभार प्रदर्शन पण्डित शांतिकुमारजी पाटील ने किया।

शिविर में प्रतिदिन आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के टेप व सी. डी प्रवचनों के पश्चात् प्रतिदिन प्रात: अन्तर्राराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के समयसार-पूर्वरंग पर मार्मिक प्रवचन हुये।

प्रतिदिन **रात्रि में मुख्य प्रवचन** के रूप में पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली के मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवें अधिकार पर मार्मिक प्रवचन के उपरान्त डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के वी.सी.डी.

प्रवचनों का प्रसारण किया जाता था।

रात्रिकालीन मुख्य प्रवचन से पूर्व पण्डित सुदीपजी जैन बीना के तीन प्रवचन एवं पण्डित सुदर्शनजी जैन बीना के दो प्रवचनों के अतिरिक्त डॉ. श्रीयांसजी सिंघई जयपुर, पण्डित संजयजी शास्त्री भोगाँव, पण्डित अध्यात्मप्रकाशजी भारिल्ल मुम्बई, पण्डित रमेशचन्दजी जैन लवाण के सुश्राव्य प्रवचनों का लाभ मिला।

प्रात: 5.30 बजे की **प्रौढ़ कक्षा** में पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर, पण्डित सुदीपजी बीना, पण्डित सुदर्शनजी बीना व पण्डित अशोकजी लुहाड़िया मंगलायतन का लाभ प्राप्त हुआ।

शिक्षण कक्षाओं में पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल द्वारा निमित्तोपादान, ब्र. यशपालजी जैन द्वारा गुणस्थान विवेचन, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री द्वारा नयचक्र, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील द्वारा मोक्षमार्ग प्रकाशक, डॉ. नरेन्द्रकुमारजी शास्त्री द्वारा छहढ़ाला, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा द्वारा क्रमबद्धपर्याय एवं पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री द्वारा सात तत्त्व सम्बन्धी भूल की कक्षायें ली गई।

दोपहर की व्याख्यानमाला में पण्डित कमलचन्दजी जैन पिड़ावा, डॉ. सुदर्शनलालजी जैन वाराणसी, पण्डित खेमचन्दजी उदयपुर, पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री, पण्डित गौरवजी शास्त्री इन्दौर एवं पण्डित प्रवीणजी शास्त्री के विविध विषयों पर प्रवचनों का लाभ मिला।

व्याख्यानमाला से पूर्व बाबू जुगलकिशोरजी युगल एवं डॉ. भारिल्ल के सी. डी. प्रवचनों का प्रसारण किया जाता था।

दिनांक 4 अक्टूबर को श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के छात्रों द्वारा **जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्त** विषय पर मार्मिक गोष्ठी का आयोजन किया गया; जिसकी अध्यक्षता श्री महावीरप्रसादजी सरावगी कोलकाता ने की।

ज्ञातव्य है कि इस शिक्षण-शिविर के आमंत्रणकर्त्ता स्व. श्री राजमलजी पाटनी की स्मृति में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रतनदेवी व उनके सुपुत्र अशोकजी पाटनी कोलकाता एवं श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल कोलकाता हैं। शिविर में नवलब्धी विधान के आयोजनकर्त्ता श्री दिग. जैन मुमुक्षु मण्डल कोलकाता था।

शिविर के मध्य डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचनों की डी. वी. डी का लोकार्पण किया गया; मात्र 100/- रुपये में मिलनेवाली इस डी.वी.डी. में 215 घंटे के प्रवचन संकलित हैं।

6 अक्टूबर को समापन समारोह की अध्यक्षता श्री विमलचन्दजी जैन दिल्ली ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री बालचन्दजी सुरेशजी पाटनी कोलकाता एवं श्री दिलीपभाई शाह मुम्बई मंचासीन थे। शिविर की आर्थिक रिपोर्ट पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा ने एवं व्यवस्थागत रिपोर्ट पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री ने प्रस्तुत की। सभा का संचालन पण्डित शांतिकुमारजी पाटील ने किया।

शिविर में कुल 666 साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया। 58 हजार रुपयों का सत्साहित्य तथा 8872 घंटों के सी.डी.व ऑडियो कैसिट्स घर-घर पहुँचे। ●

पाठकों के पत्र ...

आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित ग्रन्थाधिराज समयसार की **डॉ. भारिल्ल** द्वारा लिखित **ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका** के सम्बन्ध में हमें अनेक पाठकों के पत्र प्राप्त हुये हैं, हो रहे हैं। उनमें से हम कुछ पत्र यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं –

1. मराठी साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक, पूर्व प्राचार्य एवं अनेक शिक्षण संस्थाओं के संचालक **श्री सुमेरचन्दजी जैन, सोलापुर** से लिखते हैं –

''अत्यन्त हर्ष की बात यह है कि आपने अत्यन्त सरल, सुबोध और सब संशय वियोगिनी टीका की मधुरतम रचना की है।

सर्व एकान्तवाद को छोड़कर **अत्यन्त मर्मग्राही विवेचना** पहली बार पढ़कर परम संतोष हुआ। प्रखर पाण्डित्य के साथ ही सर्व सामान्यजनों को यह ग्रन्थ बहुत लाभदायक है। शायद पहली बार समयसार का इतना सटीक, सुस्पष्ट एवं तत्त्वार्थप्रबोधक विवेचन देखने में आया है।

आपके हृदयग्राही बहुचर्चित प्रवचन भी प्रतिदिन टी.वी. (साधना चैनल) पर सुनने का सुअवसर प्राप्त होता है।''

2. श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के मंत्री **डॉ. राजेन्द्रकुमारजी बंसल अमलाई** लिखते हैं –

''समयसार की आत्मख्याति एवं तात्पर्यवृत्ति टीका अनेकों बार पढ़ी; किन्तु डॉ. भारिल्ल की ज्ञायकभावप्रबोधिनी से जो विषयवस्तु स्पष्ट हुई, वह इसके पूर्व कभी विचार में नहीं आयी। समयसार के हार्द को समझनेवाले अन्य महानुभावों के सर्व मनोयोग से ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका अवश्य पढ़ना चाहिये। यह मात्र घर की अलमारी की शोभा नहीं बने तो उत्तम है।''

3. **श्री हुलासमलजी कासलीवाल, कोलकाता** लिखते है –

''मैंने उपरोक्त ग्रन्थ आद्योपान्त पूरे मनोयोग से पढ़ा है। आपने आचार्यवर के सूत्रों की व आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी की टीका का बहुत सरल भाषा में ऐसा स्पष्टीकरण कर दिया है कि उसके भावों को **मेरे जैसे मंद बुद्धि भी समझ सकते हैं**। इससे आपने इसे पढनेवाले मुमुक्षुओं का बहुत बड़ा उपकार किया है। आप इसीतरह दीर्घकाल तक धर्म की सेवा करते रहें। भगवान आपको स्वस्थ और चिरंजीवी रखे ह्न यही मेरी भावना है।''

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

13 से 19 नवम्बर, 06	**दिल्ली**	**विद्वत्परिषद-शिविर**
30 नव. से 6 दिसम्बर, 06	**बांसवाड़ा**	**पंचकल्याणक**
31 दिस. से 4 जनवरी, 07	**देवलाली**	**विधान**
25 से 31 जनवरी, 07	**बीना**	**पंचकल्याणक**
02 से 06 फरवरी, 07	**मंगलायतन**	**वार्षिकोत्सव**
15 से 21 फरवरी, 07	**अलवर**	**पंचकल्याणक**

सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका जीवकाण्ड हिन्दी में

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार की पण्डित टोडरमलजी द्वारा लिखित ढूंढारी भाषा में रचित सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका टीका का हिन्दी अनुवाद डॉ. उज्ज्वला शहा ने किया है। यह मात्र अनुवाद ही नहीं है अपितु अनेक स्थानों पर गहन विषयों को समझाने हेतु विशेषार्थ भी लिखा है। अर्थ संदृष्टि अधिकार में जीवकाण्ड की कठिन गणित को चिन्हों द्वारा सरल किया है; जो अभी लुप्त सा हो गया है। उसे भी अधिक विस्तार के साथ समझाकर हिन्दी भाषा मे छापने का विचार है।

लगभग 900-1000 पृष्ठों की इस हिन्दी टीका की प्रिन्टिंग शुरु हो गई है। यह महत् कार्य कुछ महिनों में सम्पन्न हो जायेगा।

जिज्ञासु मुमुक्षुजन जो इस ग्रन्थ को प्राप्त करना चाहते हैं, वे अपना आर्डर नाम, पता, टेलीफोन नं. सहित निम्न पते पर भेज दें। कोई भी व्यक्ति अभी पैसे नहीं भेजें। ग्रन्थ तैयार होने पर उन्हें पत्र द्वारा सूचित किया जायेगा। **सम्पर्क ह्न** पण्डित दिनेशभाई शाह

157/9, निर्मला निवास, सायन (पू.) मुम्बई - 400022, फोन नं. 24073581

साप्ताहिक गोष्ठियाँ सानन्द सम्पन्न

1. श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर की रविवारीय गोष्ठियों की शृंखला में दिनांक 15 सितम्बर, 06 को '**दसलक्षण पर्व के अनुभव**' विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने की।

अध्यक्षीय उद्बोधन में डॉ. भारिल्ल ने छात्रों को पर्व के अवसरों पर ध्यान देने योग्य बातों पर मार्गदर्शन दिया। मंगलाचरण रजित जैन ने एवं संचालन अतुल जैन ललितपुर ने किया।

2. इसी शृंखला में दिनांक 17 सितम्बर, 06 को '**देव-शास्त्र-गुरु : एक अनुशीलन**' विषय पर आयोजित गोष्ठी की अध्यक्षता पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री, जयपुर ने की। गोष्ठी में प्रथम स्थान आशीष जैन मडावरा व द्वितीय स्थान अभिषेक जोगी ने प्राप्त किया। संचालन रमेश शिरहट्टी व मंगलाचरण ऋषिकेश जैन ने किया।

3. इसी शृंखला में दिनांक 24 सितम्बर को '**पंचभाव : एक तत्त्व विचार**' विषय पर आयोजित हुई; जिसकी अध्यक्षता डॉ. नरेन्द्रजी शास्त्री, जयपुर ने की। श्रेष्ठ वक्ता के रूप में शास्त्री वर्ग से प्रसन्न शेटे कोल्हापुर व उपाध्याय वर्ग से अक्षय जैन पिड़ावा चुने गये।

संचालन जिनेन्द्र नंदेश्वर नन्दगाँव व मंगलाचरण अनेकान्त दिवाकर ने किया।

- संयोजक, रोहन रोटे व अंकुर जैन

वैराग्य समाचार

1. डॉ. जगदीशचन्द एवं पण्डित जतीशचन्द शास्त्री के लघु भ्राता एवं जनीशचन्द, दिनेशचन्द, नरेन्द्रकुमार, डॉ. जैनेन्द्रकुमार, विदुषी राजकुमारी जैन के बड़े भ्राता एवं डॉ. रवीश के पिता **इन्दौर निवासी श्री सतीशचन्दजी** का हार्ट की बिमारी के कारण 15 सितम्बर को 65 वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। सतीशभाई धर्मात्मा एवं सत्यवादी पुरुष थे। आपके हृदय से मुमुक्षुभाई बहिनों के लिये निरन्तर धर्मभावना ही प्रकट होती थी। आपकी दिनचर्या का शुभारंभ प्रात: अभिषेक व पूजन से होता था। प्रतिदिन दोनों समय प्रवचन सुनना उनकी दिनचर्या का अंग था। आप अपने परिवार के लिये प्रेरणास्रोत थे।

आप वर्ष में कई बार सोनगढ़ जाकर गुरुदेवश्री के आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ लिया करते थे। स्वर्गवास के कुछ दिन पहले ही आपको इन्दौर अस्पताल में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के मार्मिक संबोधन का लाभ प्राप्त हुआ था, उसी का चिंतन अन्त तक करते रहे।

आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक समिति एवं वीतराग-विज्ञान को 501/- रुपये प्राप्त हुये।

2. **लुहारदा निवासी श्री माणिकचन्दजी पाटोदी** का दिनांक 2 अक्टूबर को शांत परिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आपने अपने पिता श्री हीरालालजी पाटोदी से प्राप्त धर्म संस्कारों को अपने जीवन में उतारा तथा वे ही संस्कार अपने परिवार को भी दिये। आप अनेक बार सोनगढ़ जाकर गुरुदेवश्री के प्रवचनों का लाभ लिया करते थे तथा जयपुर व देवलाली के शिविरों में भी धर्मलाभ लेने हेतु जाते रहते थे।

3. **करहल निवासी** पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी कुमुद की धर्मपत्नी **श्रीमती महेन्द्रमालतीजी** का दिनांक 17 सितम्बर को देहावसान हो गया। आप अत्यन्त सरलस्वभावी आध्यात्मिक रुचि सम्पन्न महिला थीं। स्वाध्याय-तत्त्वचर्चा आदि आपके दैनिक जीवन का अभिन्न अंग था। आपकी स्मृति में श्री चिद्रूप जैन की ओर से वीतराग-विज्ञान हेतु 500/- रुपये प्राप्त हुये।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही चतुर्गति के दु:खों से छूटकर निर्वाण की प्राप्ति करें - यही भावना है।

- प्रबन्ध सम्पादक

श्री गुलाबचन्दजी भारिल्ल का निधन

हमारे 77 वर्षीय चचेरे भाई श्री गुलाबचन्दजी भारिल्ल, बरौदास्वामी (ललितपुर-उ.प्र.) का निधन णमोकार मंत्र के स्मरणपूर्वक हो गया है। आप अत्यन्त सरल परिणामी व सज्जन व्यक्ति थे। आप हमारे साथ 3 वर्ष तक मुरैना महाविद्यालय में होनहार विद्यार्थी के रूप में अध्ययनरत भी रहे थे। दिवंगत आत्मा शीघ्र ही सद्गति को प्राप्त करें - यही हमारी मंगल कामना है।

- रतनचन्द हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर

यात्रिक आश्रम का निर्माण

श्रवणबेलगोला (कर्ना.) : श्री निमेशभाई शांतिलाल शाह तथा श्री अनन्तभाई ए. सेठ परिवारों के अथाह परिश्रम और सहयोग से श्रवणबेलगोला में भगवान बाहूबलीस्वामी महामस्तकाभिषेक महोत्सव के मंगल अवसर पर 22 कमरे व दो विशाल हॉल से सुसज्जित **पूज्य श्री कानजीस्वामी यात्रिक आश्रम** का नवनिर्माण सम्पन्न हुआ है। जो भी मुमुक्षु भाई इस आश्रम का लाभ लेना चाहते हैं, वे दस दिन पूर्व निम्न पते पर सम्पर्क कर सकते हैं।

- श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

302, कृष्णकुंज, प्लाट नं.30, नवयुग कॉ. ओ. सो. लिमिटेड, वी.एल. मेहता मार्ग, एच.डी.एफ.सी. बैंक के ऊपर, विलेपार्ले (वे.), मुम्बई-56, फोन नं. 26130820, 26104912

शिक्षक सम्मान से सम्मानित

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक डॉ. महावीरप्रसादजी शास्त्री, उदयपुर को शिक्षक दिवस (5 सितम्बर) के अवसर पर राजस्थान सरकार द्वारा जयपुर के बिड़ला सभागार में माननीय शिक्षा मंत्री श्री घनश्यामजी तिवाड़ी के करकमलों से सम्मानित किया गया।

डॉ. जैन वर्तमान में रा.उ.मा.विद्यालय, बम्बोरा में प्राध्यापक (हिन्दी) के पद पर सेवारत हैं। श्रेष्ठ शैक्षिक रिकार्ड व राष्ट्रीय कार्यक्रमों में योगदान के फलस्वरूप 15 वर्ष की कार्यावधि में ही आपको यह पुरस्कार प्राप्त हुआ है। एतदर्थ आपको हार्दिक शुभकामनायें।

चिन्तन की गहराई और अनुभूति को अभिव्यक्त करता है

डॉ. भारिल्लजी द्वारा राम के संवेदनशील मन को प्रस्तुत करने वाली कृति **पश्चात्ताप (खण्डकाव्य)** को पढ़कर **संहितासूरि पण्डित नाथूलालजी शास्त्री, इन्दौर** से लिखते हैं -

''**पश्चात्ताप** खण्डकाव्य के रचयिता ख्याति प्राप्त तत्त्ववेत्ता विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल हैं। यह महत्त्वपूर्ण करुण रस सुबोध काव्य कविवर के **चिन्तन की गहराई और अनुभूति को अभिव्यक्त करता है।**

करोड़ों भक्तों के हृदय में बसनेवाले भगवान राम और भगवती सीता के जीवन की अनेक घटनाओं में से 'पश्चात्ताप' की इस विशिष्ट घटना को चुनकर कवि ने श्रीराम के हृदय की विशालता और अपने हृदय की सरलता को उजागर किया है। श्रीराम गर्भवती एकाकी सीता को भयानक जंगल में छुडवाने के पश्चात् सन्ताप करते रहे।

लव-कुश उत्पन्न होने और अग्नि परीक्षोत्तीर्णता के पश्चात् सीता ने संसार से विरक्त होकर आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर जीवन सार्थक बनाया। इस काव्य में इन सबका भावपूर्ण चित्रण है। उक्त पति-पत्नी के अपार धैर्य, गांभीर्य, सहिष्णुता, संवेदनशीलता एवं अद्भुत मनोबल तथा अंत में शांत रस युक्त रचना पठनीय है।''

राजस्थान की प्रसिद्ध नगरी बांसवाड़ा के निकट कूपड़ा में
श्री ज्ञायक पारमार्थिक ट्रस्ट (रजि.) द्वारा संस्थापित

रत्नत्रयतीर्थ ध्रुवधाम में

श्री नेमिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

(गुरुवार, ३० नवम्बर से बुधवार, ०६ दिसम्बर २००६ तक)

आपको सूचित करते हुये अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी अंचल में स्थित प्रसिद्ध नगरी बांसवाड़ा के निकट कूपड़ा ग्राम में श्री ज्ञायक पारमार्थिक ट्रस्ट (रजि.) द्वारा संस्थापित **रत्नत्रयतीर्थ 'ध्रुवधाम'** में श्री पंचबालयति दिगम्बर जिनमन्दिर, श्री समवशरण जिनमन्दिर एवं भगवान महावीरस्वामी मानस्तंभ का निर्माण कार्य पूर्ण हो चुका है।

इसकी प्रतिष्ठा हेतु **श्री नेमिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव** का आयोजन **गुरुवार, दिनांक 30 नवम्बर से बुधवार, 06 दिसम्बर 2006** तक अनेक भव्य आयोजनों के साथ सम्पन्न होने जा रहा है।

कार्यक्रम की सम्पूर्ण प्रतिष्ठाविधि बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद के प्रतिष्ठाचार्यत्व में सम्पन्न होगी।

इस अवसर पर जिनवाणी की अविरलधारा प्रवाहित करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान विद्यावारिधि डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी आदि अनेक विशिष्ट विद्वान पधार रहे हैं।

ज्ञातव्य है कि ध्रुवधाम संकुल में श्री कुन्दकुन्द कहान स्वाध्याय भवन, आचार्य अकलंकदेव जैन न्याय महाविद्यालय, ब्राह्मी-सुन्दरी सरस्वती निलय एवं राजा श्रेयांस भोजनालय का भी निर्माण कार्य पूर्ण हो चुका है।

जिनधर्म प्रभावना के सर्वोत्कृष्ट निमित्तभूत इस महायज्ञ में समस्त साधर्मियों को सपरिवार, इष्ट-मित्रों सहित पधारकर धर्मलाभ लेने हेतु हमारा वात्सल्यपूर्ण हार्दिक आमंत्रण है।

निवेदक

श्री नेमिनाथ दि. जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति
रत्नत्रयतीर्थ 'ध्रुवधाम' पो. कूपड़ा, जि. बांसवाड़ा (राज.) 327001
सम्पर्क-सूत्र : पं. राजकुमार शास्त्री - 09414103492, 9414103475